ॐ

शिव महिम्नः स्तोत्रम्

(हिन्दी भावानुवाद सहित)

डा० प्रेम सागर शास्त्री

प्रकाशक :

निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार

卐 卐

प्रथम-संस्करण १९८५

मूल्य—दो रुपये पचास पैंसे

卐 卐

मुद्रण :

प्रगति प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर

मंगल–कामना

'शिवमहिम्न स्तोत्र" शिवभक्ति का अति प्राचीन एवं अनुपम ग्रन्थ है। इसकी बहुत टीकायें हो चुकी हैं तथा हो रही हैं। फिर भी ग्रन्थ के भावों की नवीनता का अन्त नहीं उपलब्ध हुआ। प्रस्तुत टीका के रचयिता हैं डा० प्रेमसागर जी शास्त्री।

आप का जन्म फरीदकोट जिला पंजाब में हुआ। आप बाल्यावस्था से ही स्वाध्यायशील एवं सत्य के पुजारी रहे हैं। गम्भीर चिन्तन तथा मौलिक शैली आप के विशेष गुण हैं।

प्रस्तुत अनुवाद आपकी केवल सचेतन कला न होकर हृदय के भावों का प्रवाह पूर्ण प्रकाशन है, जिससे आन्तरिक विचारों के भक्तिमय होने का परिचय मिलता है, अतएव आप हमारी बधाई एवं आशीर्वाद के पात्र हैं।

ऋषि केशवानन्द

निवेदन[1]

'शिव महिम्न स्तोत्र' संस्कृत के प्रसिद्धतम स्तोत्रों में से एक है। महेश्वर की महिमा जैसा उदात्त प्रतिपाद्य, अपूर्व कथन-भंगिमा अर्थ-गाम्भीर्य तथा नाद-सौन्दर्य के मणिकांचन संयोग से यह अद्वितीय शिव-स्तोत्र शताब्दियों से विद्वानों और श्रद्धालुओं को अभिभूत करता आया है, इसे सिद्ध-स्तोत्र समझा जाता है। संस्कृत का शायद ही कोई विद्वान हो जो इस स्तोत्र से अपरिचित हो। इस पर अनेकों टीकायें लिखी जा चुकी हैं। एक विद्वान् ने सन् १९३३ में इस स्तोत्र पर उपलब्ध बाईस टीकाओं की सूची दी है[2]। इसके पश्चात् इस स्तोत्र पर और भी अनेक टीकाएं लिखी गई हैं। विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद भी हुए हैं।

इस स्तोत्र की प्राचीनतम उपलब्ध प्रति प्रस्तरांकित रूप में है। इंदौर शहर से करीब पचास मील दूर दक्षिण में ओंकारेश्वर (या मान्धाता) नामक एक कस्बा है। वह भारत का प्राचीन एवं प्रमुख तीर्थ स्थान है। वहाँ भगवान शिव का अमरेश्वर (अमलेश्वर या ममलेश्वर) नामक मन्दिर है। उसकी बारह ज्योतिर्लिङ्गों में

१– इस कथ्य का प्रमुख आधार 'कल्याण' का 'श्री शिवांक', (अगस्त, १९३३) है।

२– 'वही'। प्रो० रामेश्वर गौरी शंकर ओझा का उसी अंक में प्रकाशित लेख।

गणना की जाती है³। ओंकारेश्वर मन्दिर नर्मदा के उत्तरी तट पर स्थित है और अमलेश्वर (या ममलेश्वर) दक्षिणी तट पर। स्थापत्य की दृष्टि से अमलेश्वर मन्दिर अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन प्रतीत होता है।

अमलेश्वर मन्दिर के सभामण्डप और गर्भगृह के बीच एक कमरा है जिसमें दिन में भी अन्धेरा सा रहता है। इसके दाहिनी तथा वायीं ओर की दीवारों पर अनेक छोटे बड़े लेख खुदे हुये हैं। इनमें विक्रमी संवत् ११२० (सन् १०६३) के खुदे चार स्तोत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें वायीं ओर की दीवार के नीचे के भाग में 'शिवमहिम्न–स्तव' खुदा हुआ है। भट्टारक गन्धध्वज ने बड़ी सावधानी से इस स्तोत्र का प्रस्तरांकन किया है। (इसमें अज्ञान वश कतिपय लिपिदोष रह गये हैं।)

इस प्रस्तरांकित प्रति में इकत्तीस श्लोक हैं और अन्त में लिखा हुआ है—"इति शिव महिम्नः स्तंव समाप्तमिति"। परवर्ती-काल की प्रतियों में श्लोकों की संख्या छत्तीस, चालीस, इकतालीस बयालीस और तैंतालीस तक पहुँची हुई है। संस्कृत के प्रसिद्ध टीका-कार प्रकाण्ड पण्डित श्री मधुसूदन सरस्वती ने इस स्तोत्र के इकत्तीस

३– 'सौराष्ट्रे सोमनाथं[1] च श्री शैले मल्लिकार्जुनम्[2]।
उज्जयिन्यां महाकाल[3]मोङ्कारममलेश्वरम्[4] ॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं[5] च डाकिन्यां भीमशंकरम्[6]।
सेतुबन्धे तु रामेशं[7] नागेशं[8] दारुकावने ॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं[9] त्र्यम्बकं[10] गौतमी तटे।
हिमालये तु केदारं[11] घुश्मेशं[12] च शिवालये ॥३॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥४॥

श्लोकों पर ही टीका लिखी है। (उन्होंने श्लोकों के विष्णुपरक और शिवपरक दो दो अर्थ लगाये हैं।) इससे लगता है कि सोलहवीं शताब्दी तक इस स्तोत्र के इकत्तीस श्लोक ही प्रसिद्ध थे। वम्बई के निर्णयसागर प्रैस से प्रकाशित इस टीका वाली प्रति में पाँच अतिरिक्त श्लोक दिये गये हैं। सम्पादक ने लिखा है कि मधुसूदन सरस्वती ने सरल समझ कर टीका नहीं लिखी (लगती)। सम्पादक ने लोक-पाठ का अनुसरण कर छत्तीस श्लोकों का स्तोत्र प्रकाशित किया है। अधिक सम्भावना यही है कि इकत्तीस के वाद वाले श्लोक प्रक्षिप्त हैं। श्रद्धालु विद्वानों ने रचना और रचयिता के माहात्म्य और महिमा को स्तोत्र के अन्त में जोड़ दिया है।

अमलेश्वर (अमरेश्वर या ममलेश्वर) की प्रस्तरांकित प्रति में लेखक का नामोल्लेख नहीं है। इकत्तीस श्लोकों से अधिक श्लोकों वाली प्रतियों में दिये परवर्ती श्लोकों में एकाधिक वार पुष्पदन्त का रचयिता के रूप में नामोल्लेख हुआ है। उसे शापभ्रष्ट गन्धर्वराज वताया गया है। क्या स्तोत्र के रचयिता का वास्तविक नाम पुष्पदन्त ही है, या यह छद्म नाम है? कुछ नहीं कहा जा सकता।

काश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान जयन्त भट्ट (नौवीं शताब्दी) ने अपने "न्याय मञ्जरी" नामक ग्रन्थ में पुष्पदन्त नामक एक विद्वान का उल्लेख किया है और देवी के शाप से उसके पतन की भी चर्चा की है। क्या इन्हीं पुष्पदन्त ने "शिव महिम्न स्तोत्र" की रचना की है? परवर्ती काल में प्रसिद्ध किंवदन्ती के अनुसार पुष्पदन्त नामक गन्धर्वराज शिव निर्माल्य पर पाँव रखे जाने के कारण अपनी अन्तर्धान शक्ति खो वैठा था। 'शिवस्तव गान' से वह पुनः प्रभु-कृपा का अधिकारी वना और पूर्व प्रतिष्ठा पा सका। यदि 'न्याय मञ्जरी' में उल्लिखित पुष्पदन्त इस स्तोत्र के रचयिता हैं[४] तो निश्चय ही यह

४—अधिक संभावना यही है। शापभ्रष्ट होना दोनों किंवदन्तियों में समान है, नाम समान है। किंवदन्ती का रूप वदल गया है।

रचना नौवीं शताब्दी से भी पहले की है। सन् १०६३ तक यह स्तोत्र इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि इसे महेश्वर-मन्दिर में प्रस्तरांकित करना उचित समझा गया। कुछ विद्वान् इस रचना को सातवीं शताब्दी से भी पूर्व की रचना मानते हैं, पर इसके अभी तक कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इतना निश्चित है कि एक सहस्र वर्ष से भी अधिक समय से यह अपूर्व स्तोत्र श्रद्धालु विद्वानों को अभिभूत करता आ रहा है।

ऐसे अद्भुत सिद्धस्तोत्र का हिन्दी रूपान्तर[५] प्रस्तुत करते समय अपनी अकिंचनता का बोध मन को बहुत संकुचित किये जा रहा है। संबल है तो इसी स्तोत्र के एक श्लोक में प्रकट हुई इस भावना का :—

कहाँ अल्प विकसित क्लेशों के वश निर्बल मेरा मन ?
कहाँ शाश्वती सर्वातीता तेरी महिमा प्रभु जी ?
आशुतोष, हे परमपिता ! तेरी करुणा के बल पर
भाव सुमन की अञ्जलि अर्पित की है श्री चरणों में ॥

—: इति शिवमिति :—

—डॉ० प्रेम सागर

५— इस प्रयास को 'रूपान्तर' की अपेक्षा 'भावानुवाद' कहना अधिक संगत है। कहीं कुछ बढ़ गया है, कहीं कुछ छूट गया है या कहीं कुछ बदल गया है। मूल स्तोत्र में औदात्य अधिक है, हिन्दी रूपान्तर में 'लालित्य'। यह भाषा का प्रभाव है या रूपान्तरकार का स्वभाव या उसकी क्षमता-सीमा ? वही जाने।

अथ शिव-महिम्नः-स्तोत्रम्

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमति परिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

अन्वय—हर, ते महिम्नः परम् पारंम् अविदुषः स्तुतिः यदि असदृशी, तद् ब्रह्मादीनाम् अपि गिरः त्वयि अवसन्नाः । अथ स्वमति परिणामावधि गृणन् सर्वः अवाच्यः(अनिन्दनीयः) भवति । ममापि स्तोत्रे एषः परिकरः निरपवादः (एव) ।

हिन्दी-रूपान्तर

सर्वातीत अवर्ण्य महेश्वर सब तेरा यश गावें,
ब्रह्मा जैसे विज्ञ और सामान्य अज्ञ सब ध्यावें ।
सब की सीमित क्षमता फिर भी सभी सदा गुण गावें,
मुझसे अज्ञ अकिंचन भी फिर क्यों पीछे रह जावें ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ् मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

अन्वय–च तव महिमा वाङ् मनसयोः पन्थानं अतीत, यं श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते । स कस्य स्तोतव्यः, कतिविध गुणः, कस्य विषयः भवति ? अर्वाचीने पदे तु कस्य मनः, (कस्य) वचः न पतति ?

रूपान्तर

मन वाणी की सीमाओं से परे तुम्हारी महिमा
'नेति' 'नेति' कहतीं विमूढ़ रह जाती हैं श्रुतियाँ भी ।
किसका है सामर्थ्य ईश के गुण गिन ले स्तुति कर ले,
फ़िर भी लीलारूप न किस मन वाणी को भरमाते ॥

मधुस्फीता वाच: परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुण कथन पुण्येन भवत:
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धि र्व्यवसिता ॥३॥

अन्वय–ब्रह्मन् ! मधुस्फीता: परमम् अमृतं वाच: निर्मितवत: तव सुरगुरो: अपि वाक् किं विस्मयपदम् ? पुरमथन ! भवत: गुणकथन पुण्येन तु मम एतां वाणीं पुनामि इति अस्मिन् अर्थे मम बुद्धि व्यवसिता ।

रूपान्तर

परमा अमृतमयी श्रुतियों के स्रष्टा मेरे प्रभु की,
सुरगुरु की वाणी भी महिमा कहाँ बता सकती है ?
मेरा यह प्रयास तो केवल तेरी महिमा गाकर,
अपनी वाणी को पवित्र करने ही की चेष्टा है ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदय रक्षा प्रलय कृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जड़धियः ॥४॥

अन्वय—वरद ! त्रयीवस्तु जगत्-उदय-रक्षा प्रलयकृत् गुण भिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तं तव यत् ऐश्वर्यं तत् विहन्तुं एके जड़धियः अस्मिन् अभव्यानाम् रमणीयाम् (वस्तुतः) अरमणीं व्याक्रोशीं विदधते।

रूपान्तर

हे वरदायक, सृष्टि विधायक पालक औं संहारक,
त्रिविध गुणमयी त्रिविधा कृतियों में प्रकटे लीलाधर।
मन्द बुद्धि मीमांसक भ्रामक आकर्षक तर्कों का,
आश्रय ले चेष्टा करते हैं प्रभु-महिमा खण्डन की ॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसर दुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अन्वय–खलु सः धाता किमीहः किं कायः किमुपायः किमाधारः किमुपादानः त्रिभुवनं सृजति इति च अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसर दुःस्थः अयं कुतर्कः जगतः मोहाय कांश्चित् हतधियः मुखरयति ॥

रूपान्तर

किस इच्छा से, किस शरीर से, साधन सामग्री से,
क्या लेकर आधार विधाता तीन लोक रचता है ?
इस प्रकार के ले कुतर्क दुर्बुद्धि कई मीमांसक,
दिक् भ्रम फैलाते हैं जग में हे अतर्क्य परमेश्वर !

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवन जनने कः परिकरः
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ।।६।।

अन्वय–अमरवर ! अवयववन्तोऽपि लोकाः अजन्मानः किम् ? जगताम् भवविधिः अधिष्ठातारम् अनादृत्य भवति किम् ? भुवन जनने अनीशः कः वा परिकरः कुर्यात् ? यतः इमे मन्दाः त्वाम् प्रति संशेरते ।

रूपान्तर

विविध अवयवों वाले ये सब लोक बिना जन्मे क्या,
बिना अधिष्ठाता के ही सब 'अस्तिरूप' लेते हैं ?
बिना नियन्ता के यह सारा उपक्रम कब सम्भव है,
मन्दबुद्धि हो, हे परमेश्वर ! शंकाकुल होते हैं ।।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रूचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषाम्
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

अन्वय—त्रयी सांख्यं योगः पशुपति मतं वैष्णवम् इति प्रभिन्ने प्रस्थाने (सति) इदम् परम् अदः पथ्यम् इति च रुचीनाम् वैचित्र्यात् ऋजु कुटिल नाना पथजुषाम् नृणाम्, पयसाम् अर्णवः इव त्वम् एकः गम्यः असि ।

रूपान्तर

तीन वेद या साँख्य योग या पशुपति मत या वैष्णव,
भिन्न पंथ हैं जटिल सरल सब अपनी रुचि पर निर्भर ।
हे अनन्त रमणीय ! तुम्हें पाने को सब यों आतुर,
भिन्न-भिन्न जल धाराओं का एक प्राप्य ज्यों सागर ।

महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद् भ्रू प्रणिहिताम्
न हि स्वात्मारामं विषयमृग तृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

अन्वय—वरद ! तव तन्त्रोपकरणं तु महोक्षः, खट्वांगं, परशुः अजिनम्, भस्म, फणिनः, कपालं च इति इयत् । सुराः भवद् भ्रू प्रणिहितां ताम् ताम् ऋद्धि विदधति । हि विषय-मृगतृष्णा स्वात्मारामं न भ्रमयति ।

रूपान्तर

एक वृषभ खट्वांग परशु बाघाम्बर औ फणिमाला,
भस्म कपाल त्रिशूल डमरू बस यही संपदा सारी
देवों की सारी निधियां तेरे प्रसाद का फल हैं,
आत्म रमयिता को विषयों की तृषा न भरमा सकती ॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदम्
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥८॥

अन्वय—पुरमथन ! कश्चित् सर्वं जगत् ध्रुवं गदति । अपरः तु इदम् सकलम् अध्रुवं (गदति) । परः जगति ध्रौव्याध्रौव्ये व्यस्त विषये (गदति) । तैः विस्मितः इव (अहम्) त्वाम् स्तुवन् न जिह्रेमि । ननु खलु मुखरता धृष्टा ॥

रूपान्तर

सत् है सृष्टि कार्य कारण दोनों ही सत् कुछ कहते,
सभी असत् क्षण-क्षण विलीन कुछ अन्य सिद्ध करते हैं ।
सदसत् कहते हैं कुछ, मैं विस्मित विमुग्ध विनमित हो,
निःसंकोच त्रिपुरनाशक का स्तवन गान करता हूं ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम् गिरिश यत्,
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अन्वय—गिरिश अनिलस्कन्धवपुषः तव यत् ऐश्वर्यं तत् उपरि विरंचिः, अधः हरिः, यत्नात् परिच्छेतुं अनलम् यातौ । ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां ताभ्यां यत् त्वं स्वयं तस्थे । तव अनुवृत्तिः किम् न फलति ?

रूपान्तर

हे असीम, हे ज्योतिशरीरी, तुम्हें माप लेने को,
ऊपरि छोर को गये चतुर्मुख निम्नछोर लक्ष्मी पति ।
विफल हुए, फिर लगे भक्तिश्रद्धा से महिमा गाने,
आशुतोष, प्रभु स्वयं प्रकाशित हुए, न स्तुति निष्फल हो ॥

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरम्,
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणीं रचितचरणाम्भोरुहबलेः,
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ।११।।

अन्वय—त्रिपुरहर ! दशास्यः अयत्नात् त्रिभुवनम् अवैरव्यतिकरम् आसाद्य रणकण्डूपरवशान् बाहून् यत् अभृत, इदम् शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् ।।

रूपान्तर

बिना यत्न ही दशमुख ने त्रिभुवन को जीत लिया था,
सदा रहा उत्सुक अरि को रण में परास्त करने में ।
निस्सन्देह प्रगाढ़ भक्ति का ही हे प्रभु, यह फल था,
प्राप्त हुआ, तव चरणों में अर्पित करने से बश शिर ।।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्,
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयत: ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खल: ।१२

अन्वय—त्वत् सेवा समधिगत सारं भुजवनं त्वदधि-वसतौ कैलासे अपि बलात् विक्रमयतः अमुष्य प्रतिष्ठा त्वयि अलसचलितांगुष्ठ शिरसि पाताले अपि अलभ्या आसीत् । ध्रुवम् उपचित: खलः मुह्यति ॥

रूपान्तर

भक्तिभाव से प्राप्त-शक्ति मदमत्त हुआ जब रावण,
लगा आपके ही निवास को विस्थित करने बल से ।
पादांगुष्ठ परस से ही पाताल सिधार गया था,
प्रभुता पा. बौराये खल की यही दशा होती है ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्नकस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

अन्वय—वरद ! परिजन विधेय त्रिभुवनः बाणः परमोच्चैः सतीम् अपि सुत्राम्णः ऋद्धि यत् अधः चक्रे त्वत् चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् तत् न चित्रम् । त्वयि शिरसः अवनतिः कस्य (कस्यै) उन्नत्यै न भवति ?

रूपान्तर

बाणासुर ने प्रभुप्रसाद से तीन लोक जीते थे,
सुरपति के सारे वैभव को धूमिल बना दिया था।
जिसने भी तेरे चरणों में जितना सीस नवाया,
उतना ही उन्नति के पथ पर बढ़ता चला गया है॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षय चकितदेवासुर कृपा,
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो,
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः ।।१४।।

अन्वय—त्रिनयन ! अकाण्ड ब्रह्माण्डक्षय चकित देवासुर कृपा विधेयस्य विषं संहृतवतः तव कण्ठे यः कल्माषः सः श्रियम् न कुरुते इति न । भुवनभय भंग व्यसनिनः (तव) विकारः अपि श्लाघ्यः ।

रूपान्तर

अकस्मात् तीनों भुवनों के क्षय की आशंका से,
भीतिमूढ़ देवों असुरों को भीतिमुक्त करने को ।
सागर मन्थन से निकले विष को समेट कर सस्मित,
नील कण्ठ बन कर प्रभु कितने सुन्दर लगते हो ।।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुर नरे,
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

अन्वय—ईश यस्य विशिखा जगति सदेवासुरनरे क्वचित् अपि असिद्धार्थाः न निवर्तन्ते, नित्यं जयिनः भवन्ति सः स्मरः त्वाम् इतरसुर साधारणम् पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत् । हि वशिषु परिभवः पथ्यः न ॥

रूपान्तर

देव असुर औ, नर समेत संपूर्ण सृष्टि उस प्रभु की,
जिसके बाणों की नोकों से सदा बिंधी रहती है।
वही अबाधित काम आपको छलने की चेष्टा में,
नामशेष रह गया, न प्रभु को प्रभुमाया छलती है ॥

महीं पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्,
पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा,
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

अन्वय—त्वं ज़गद् रक्षायै नटसि । (तव) पादाघातात् मही सहसा संशयपदं व्रजति । भ्राम्यद् भुज परिघ रूग्णग्रहगणम् विष्णोः पदम् (संशय पदं व्रजति) । मुहुः अनिभृतजटा ताड़ित तटा द्यौः द्यौस्थ्यं याति । ननु विभुता वामा एव (भवति) ।

रूपान्तर

नृत्य निरत नटराज ! तुम्हारे पदाघात से पृथिवी,
भुज प्रसार से ग्रहगण खचिताकाश, सशंकित, विनमित ।
जटाजूट के ताड़न से अमरावती मर मर जाती,
जगत रक्षिका भी, विभुता शंकाकुल ही कर जाती ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनेवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥१७॥

अन्वय–वियद् व्यापी तारागण गुणित फेनोद्गम रुचिः यः वारां प्रवाहः (स) ते शिरसि पृषत-लघु दृष्टः तेन जगत् जलधि वलयं द्वीपाकारं कृतम् इति अनेन तव दिव्यं वपुः धृत महिम उन्नेयम् ।

रूपान्तर

व्योम धरा पाताल सभी को वलयित करने वाली,
मन्दाकिनी, अमरगंगा वह भोगावती अपारा ।
जटाजूट में तेरे नन्हीं बुंदिया सी लगती है,
दिव्यदेह की महिमा का अनुमान कहाँ लग सकता ? ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो,
रथांगे चन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

अन्वय—त्रिपुर तृणम् दिधक्षोः ते क्षोणी रथः (आसीत्) शतधृतिः यन्ता (आसीत्), अगेन्द्रः धनुः (आसीत्) अक्षो चन्द्राकौं रथाङ्गे (आस्ताम्) । रथचरण पाणिः शरः (आसीत्) । इति कः अयम् आडम्बर विधिः ? खलु विधेयैः क्रीड़न्त्यः प्रभुधियः परतन्त्राः न (सन्ति) ।

रूपान्तर

पृथ्वी रथ, विधि बने सारथी, चन्द्र सूर्य रथ चक्के,
मेरु धनुष, शर बने चक्रधर इतनी आडम्बर विधि ।
लघु तृण सदृश त्रिपुर दाहन हित यों उपकरण जुटाये,
लीलामय तेरी लीला का पार न कोई पाये ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा-
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

अन्वय—त्रिपुरहर ! हरिः ते पदयोः साहस्त्रं कमलबलिम् आधाय (अथ) तस्मिन् एकोने यत् निजम् नेत्र कमलम् उदहरत्, असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिं गतः, त्रयाणां जगताम् रक्षायै जागर्ति ।

रूपान्तर

पुरश्चरण में रत हरि ने जब एक कमल कम पाकर,
अपना नयन—कमल प्रभु के चरणों में चढ़ा दिया था।
दृष्टि-शक्ति ही चक्र सुदर्शन बनी समर्पित होकर,
तीन लोक की रक्षा में रत है, हे त्रिपुर विनाशक ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमताम्,
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं-
श्रुतौ श्रद्धां बद्धा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

अन्वय–क्रतौ सुप्ते क्रतुमतां फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि । पुरुषाराधनम् ऋते प्रध्वस्तं कर्म क्व फलति ? अतः जनः त्वां क्रतुषु फलदान प्रतिभुवं सम्प्रेक्ष्य श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कर्मसु दृढ परिकरः (भवति) ।

रूपान्तर

कर्म समापन पर भी जाग्रत सदा कर्म फलदाता,
नष्ट कर्म के फल प्रभु बिन संभव कैसे हो सकते ?
कर्म मात्र के फलदाता, तुम में विश्वास बिना कब,
श्रुतियों में श्रद्धालु और सत्कर्म प्रवृत्त मनुज हों ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीश स्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो—
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

अन्वय–शरणद ! तनुभृताम् अधीशः क्रिया दक्षः, दक्षः (यत्र) क्रतुपतिः, (तथा यत्र) ऋषीणाम् आर्त्विज्य, (तथा) सुर गणाः (यत्र) सदस्याः (तत्रापि) क्रतुफलविधान व्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंश (जातः)। हि श्रद्धा विधुरम् मखाः कर्तुः अभिचाराय ध्रुवं भवन्ति ।

रूपान्तर

यज्ञ कर्म में दक्ष प्रजापति स्वयं यज्ञकर्ता हों,
सभी देवता आमन्त्रित हों ऋषि हों यज्ञपुरोहित ।
फिर भी यज्ञकर्म फलदाता बने यज्ञ विध्वंसक,
श्रद्धाविरहित कर्म सुनिश्चित प्रतिफल ही देते हैं ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं,
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम्,
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

अन्वय–नाथ ! अभिकं ऋष्यस्य वपुषा रोहिद्भूतां स्वां दुहितरं रिरमयिषुम् गतं सपत्राकृतम् त्रसन्तं दिवम् यातं अपि अमुं प्रजानाथं धनुष्पाणेः मृगव्याधरभसः अद्यापि न त्यजति ।,

रूपान्तर

भीतमृगी निज कन्या पर भी नीतिभ्रष्ट हो ब्रह्मा,
कामासक्त हुए मृग बन कर, बच न सके प्रभु तुमसे ।
व्याध बने प्रभु ने खर-शर से बींध दिया कामी को,
नभ तक भी भागे अन्यायी, त्राण नहीं पाता है ।

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्,
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३॥

अन्वय —पुरमथन वरद ! देवी स्वलावण्याशंसा धृत धनुषम् पुष्पायुधम् पुरः तृणवत् अन्हाय (त्वया) प्लुष्टं दृष्ट्वा अपि यदि यम निरत देहार्धं घटनात् स्त्रैणं अवैति बत अद्धा युवतयः मुग्धाः (भवन्ति) ।

रूपान्तर

धनुषहस्त मन्मथ के क्षण में तृण समान संहारक,
त्रिपुर विनाशक प्रभु की अर्द्धांगिनी बनी हिमबाला।
कृच्छ्र साधना की महिमा को भूल, स्वसुन्दरता को,
इसका कारण समझे यह भोलापन है मुग्धा का ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः ।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं,
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ।।२४।।

अन्वय–स्मरहर वरद ! तव आक्रीडा श्मशानेषु [अस्ति], पिशाचाः सहचराः [सन्ति], चिताभस्मालेपः [अस्ति], अपि नृकरोटी परिकरः स्रक् (अस्ति) । एवम् (तव) अखिलं शीलं नाम अमांगल्यं भवतु, तथापि स्मर्तॄणाम् परमं मंगलम् अस्ति ।।

रूपान्तर

हे अद्‌भुत, हे कामविनाशक, विषपायी, खलनाशक,
मुण्डमाल मण्डित, श्मशान में क्रीड़ारत, भस्मावृत ।
भूतपिशाच सहायक, सहचर, शील अशंकर त्रासक,
शरणागत की पूर्णकामना करते, हे शिव शंकर ।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः,
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमद सलिलोत्संगितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये,
दधत्यन्तस्तत्त्वंकिमपि यमिनस्तत् किल भवान् ।।२५।।

अन्वय–यमिनः आत्तमरुतः सविधम् प्रत्यक् चित्ते मनः अवधाय यत् किमपि तत्वं आलोक्य प्रहृष्यद् रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः अमृतमये ह्रदे निमज्य इव अन्तराह्लादं दधति, तत् तत्त्वं किल भवान् ।

रूपान्तर

परम तत्व के साधक योगी सविधि श्वास संयत कर
स्वान्तः स्थित आनन्दमग्न जब रोमांचित होते हैं।
अमृतकुण्ड में मज्जित से गलदश्रु विभोर दशा में
जिसका अवलोकन करते वह परम तत्व तुमही हो ।।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मात्वमितिच ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं,
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

अन्वय–त्वम् अर्कः, त्वम् सोमः, त्वम् पवनः, त्वं हुतवहः त्वम् आपः, त्वम् व्योम, उ त्वम्, धरणिः आत्मा इति च असि । परिणताः एवं त्वयि परिच्छिन्नाम् गिरं विभ्रति । तु वयम् इह त्वम् यत् न भवसि तत् तत्त्वं न विद्मः ।

रूपान्तर

तुम्हीं सूर्य हो, तुम्हीं चन्द्रमा, तुम्हीं पवन, वैश्वानर,
नीर तुम्हीं औ' व्योम तुम्हीं, तुमही पृथिवी, आत्मा तुम ।
ज्ञानी जन प्रभु के बारे में इतना कुछ कहते हैं
हम न जानते ऐसा कोई तत्त्व न जिसमें तुम हो ॥

त्रयीं तिस्त्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णै स्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः,
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

अन्वय–शरणद ! त्रयीं तिस्रः वृत्तीः त्रिभुवनम् अथो त्रीनपि सुरान् अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः अभिदधत् ओम् इति पदम् व्यस्तं त्वाम् गृणाति अणुभिः ध्वनिभिः अवरून्धानम् (ॐ इतिपदम्) ते तीर्णविकृति तुरीयं धाम त्वाम् (गृणाति) ।

रूपान्तर

तीन वेद या तीन वृत्तियाँ तीन भुवन देवत्रय
तीन वर्ण से त्रिगुणात्मिका सृष्टि वर्णित होती है।
इनसे परे तुरीया स्थिति भी तेरी 'ॐ' अक्षर से
संकेतित है इसीलिये हम ओम् 'ॐ' कहते हैं॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि,
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

अन्वय–देव ! भवः शर्वः, रुद्रः पशुपतिः, उग्रः सहमहान् (महादेवः) भीम ईशानौ इति यद् इदम् अभिधानाष्टकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति, अस्मै भवते प्रियाय धाम्ने प्रणिहित-नमस्यः अस्मि ।

रूपान्तर

भव औ' शर्व, रुद्र औ' पशुपति उग्र तथा ईशान,
महादेव औ' भीम नाम ये आठ तुम्हें प्यारे हैं ।
हे असंख्य अभिधानरूप शिव इस नामाष्टक का तो
श्रुतियां भी वर्णन करतीं हम बार बार प्रणमित हैं ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो-.
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो–
नमः सर्वस्मै ते तदिदमति सर्वाय च नमः ॥२९॥

अन्वय–प्रियदव ! नेदिष्ठाय नमः दविष्ठाय च ते नमः ।
स्मरहर ! क्षोदिष्ठाय नमः महिष्ठाय च नमः ॥
त्रिनयन ! वर्षिष्ठाय नमः यविष्ठाय च नमः ।
सर्वस्मै नमः अतिसर्वाय च ते तत् इदं नमः ॥

रूपान्तर

तुम्हीं निकटतम, मेरे प्रभु, तुमही सुदूरवर्ती हो
तुम्हीं सूक्ष्मतम, मेरे स्वामी, तुम्हीं महत्तम निश्चित ।
तुम्हीं वृद्धत्तम, मेरे प्रिय, तुमहीं सब से छोटे हो
सर्व तुम्हीं, औ' सर्वातीत तुम्हीं, तुम हीं तुम हो हो ॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः,
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृड़ाय नमो नमः,
प्रमहसिपदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

अन्वय—विश्वोत्पत्तौ बहुल रजसे भवाय नमोनमः ।
सत्त्वोद्रिक्तौ जनसुख कृते मृड़ाय नमोनमः ॥
सत्संहारे प्रबल-तमसे हराय नमोनमः ।
निस्त्रैगुण्ये प्रमहसि पदे शिवाय नमो नमः ॥

रूपान्तर

विश्वसृजन में रजस रूप हे 'भव'—अभिधान प्रणाम,
पालन पोषण में सात्विक हे 'मृड'— अभिधान प्रणाम ।
समाहार में तमोगुणी हे 'हर'—अभिधान प्रणाम
गुणातीत आनन्दरूप हे 'शिव'—अभिधान प्रणाम ॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम्,
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दी कृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

अन्वय—वरद ! कृश परिणति क्लेशवश्यं इदं चेतः क्व च ? गुणसीमोल्लंघिनो तव शश्वद् ऋद्धिः च क्व ? इति चकितम् मां अमन्दीकृत्य भक्तिः ते चरणयोः वाक्य-पुष्पोप-हारम् आधात् ।

रूपान्तर

कहाँ अल्प विकसित क्लेशों के वश निर्बल मेरा मन
कहाँ शाश्वती सर्वातीता तेरी महिमा प्रभु जी ।
आशुतोष, हे परम पिता ! तेरी करुणा के बल पर
भाव सुमन की अञ्जलि अर्पित की है श्रीचरणों में ॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।३२।।

अन्वय—(यदि) असित गिरि समं कज्जलं (स्यात्), सिन्धुः पात्रं (स्यात्), सुरतरुवर शाखा लेखनी (स्यात्) उर्वी पत्रं स्यात्, (एतानि) गृहीत्वा यदि शारदा सर्व कालं लिखति, तदपि (हे) ईश ! तव गुणानां पारं न याति ।

रूपान्तर

सिन्धु सदृश हों पात्र और मसि गिरिवर सदृश घनी हो,
सुरतरूशाखा बने लेखनी पृथ्वी पत्र सदृश हो ।
माँ सरस्वती लिये लेखनी सभी समय लिखती हों,
तब भी, हे असीम ! गुण तेरे गिने नहीं जा सकते ।।

असुरसुरमुनीन्द्रै रर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो,
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अन्वय—सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः असुर-सुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ग्रथित गुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य एतत् रुचिरम् स्तोत्रम् अलघुवृत्तैः चकार ।

रूपान्तर

असुर-देवता औ मुनियों से वन्दित मेरे प्रभु की
पुष्पदन्त ने महिमा का अद्भुत गुण गान किया है।
त्रिगुणातीत महेश्वर के गुण गाकर अमर हुआ वह
"शिव महिम्न" यह स्तोत्र अमर है शिवभक्तों के मन में ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्,
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र,
प्रचुरतर धनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥

अन्वय–शुद्धचित्तः यः पुमान् परम भक्त्या अनवद्यं एतत् धूर्जटेः स्तोत्रम् अहरहः पठति सः शिवलोके रुद्रतुल्यः भवति तथा अत्र प्रचुरतर धन-आयुः पुत्रवान् कीर्तिमान् च (भवति) ।

रूपान्तर

शुद्धचित्त जो व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा से केन्द्रित मन से प्रतिदिन शिव महिमा की स्तुति का पाठ किया करता है। शिव के धाम पहुंचने पर वह शिव ही हो जाता है और धरा पर मर्त्यलोक के सब सुख पा जाता है ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥

अन्वय—महेशात् अपरः देवः न, महिम्नः अपरा स्तुतिः न, अघोरात् अपरः मन्त्रः न, गुरोः परं तत्त्वं नास्ति ॥

रूपान्तर

महेश से परे न कोई देवता
महिम्न से परे न कोई स्तोत्र है ।
अघोर से परे न कोई मन्त्र है
परे गुरू से कोई तत्व ही नहीं ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं होमयागादिकाः क्रियाः
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।३६।।

अन्वय—दीक्षा दानं तपः तीर्थं ज्ञानं यागादिका क्रियाः (च) महिम्नः स्तवपाठस्य षोडशीं कलां न अर्हन्ति ।

रूपान्तर

दीक्षा या दान,
तप हो या ज्ञान,
शास्त्र - विहित यजन हो या तीर्थाटन स्नान,
शिव महिम्न स्तोत्र के न षोड़शांश (स) मान ।

कुसुमदशन नामा सर्वगन्धर्वराजः,
शिशु शशिधरमौले र्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्,
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

अन्वय–कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः शिशुशशिधर-
मौलेः देवदेवस्य दासः (आसीत्) । स खलु अस्य रोषात्
निजमहिम्नः भ्रष्टः सन् दिव्यदिव्यम् इदम् महिम्नः
स्तवनम् अकार्षीत् ।

रूपान्तर–

पुष्पदन्त' जो अब गन्धर्वों का राजा था
महादेव शशिशेखर का सेवक आराधक,
रूद्र कोप वश निज महिमा से सबलित हुआ जब
शिव महिम्न स्तुति गाकर लब्ध-प्रतिष्ठ हो गया ॥

सुरगुरुमभिपूज्य स्वर्ग मोक्षैकहेतुम्,
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
ब्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः,
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्त प्रणीतम् ॥३८॥

अन्वय—स्वर्ग मोक्षैक हेतुम् सुरगुरुम् अभिपूज्य नान्य-चेताः प्राञ्जलिः मनुष्यः यदि पुष्पदन्त प्रणीतम् इदम् अमोघम् स्तवनम् पठति (तदा सः) किन्नरैः स्तूयमानः शिवसमीपं व्रजति ।

रूपान्तर

पुष्पदन्त कृत इस महिम्न को जो कोई नर
आशुतोष का आराधन कर दत्त-चित्त हो ।
विनत भाव से पढ़ता है तो निश्चय जानो,
किन्नर गण से स्तूयमान शिव पद पाता है ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि सर्वमीश्वरवर्णनम् ॥३९॥

अन्वय—गन्धर्वभाषितम् ईश्वरवर्णनम् अनौपम्यं पुण्यं इदम् स्तोत्रम् सर्वम् मनोहारि आसमाप्तम् ।

रूपान्तर

पुष्पदन्त गन्धर्व रचित इस पुण्य स्तोत्र का
मनोहारि शंकर-महिम्न का हुआ समापन ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयताम् मे सदाशिवः ॥४०॥

अन्वय—एषा वाङ्मयी पूजा श्रीमत् शंकर पादयोः अर्पिता, इति तेन सदाशिवः देवेशः मे प्रीयताम् ।

रूपान्तर

स्तोत्र रूपिणी पूजा यह प्रभु के चरणों में,
अर्पित है देवेश, सदाशिव हे करुणाकर !

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४१॥

अन्वय — महेश्वर ! तव तत्त्वं कीदृशः असि न जानामि । महादेव ! यादृशः असि तादृशाय नमो नमः ॥

रूपान्तर

हे महेश ! मैं नहीं जानता कैसे हो तुम ?
जैसे भी हो परमपिता ! मैं विनत नमित हूं ।।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः
सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४२॥

अन्वय—यः नरः एककालं वा द्विकालं (वा) त्रिकालं (स्तोत्रं) पठेत् सः (नरः) सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।

रूपान्तर

एक काल दो काल पढ़े या तीन काल जो
पापमुक्त हो प्रभु चरणों में रहे प्रतिष्ठित ॥

श्री पुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन,
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन,
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ।।४३।।

अन्वय—श्री पुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन किल्विषहरेण हरप्रियेण स्तोत्रेण कण्ठस्थितेन पठितेन गृहस्थितेन भूतपतिः महेशः सुप्रीणितः भवति ।

रूपान्तर

पुष्पदन्त के श्रीमुख से निकली यह वाणी
सर्वपाप हरती हर को अति ही प्यारो है ।
स्मरण करे या पढ़े मात्र घर में ही रख ले
शिव महिम्न" यह स्तोत्र सदा शिव को प्यारा है ।।

श्री शिवपञ्चाक्षर स्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय,
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥१॥
मन्दाकिनी सलिलचन्दनचर्चिताय,
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय,
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥२॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द–
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय,
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥३॥
वशिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय, तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥४॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय, पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ।५।

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

निर्धन निकेतन खड़खड़ी, हरिद्वार

'एक परिचय'

तीर्थधाम हरिद्वार में गंगातट पर निर्धन निकेतन 'आश्रम' की स्थापना सन १९५६ ई० में ब्रह्मलीन श्री १०८ पं० वंशीधर जी महाराज की पुण्यस्मृति में की गई।

आश्रम का उद्देश्य है कि हरिद्वार में गंगादर्शन के लिये आने वाला भक्त यात्री सेवक जहाँ इस एकान्त शान्त प्राकृतिक स्वच्छ वातावरण के सुखद परमानन्ददायक आश्रम में गंगातट पर योगसाधनादि के भगवच्चिन्तन साधन द्वारा ईश्वर प्राप्ति मुक्तिपथ का पथिक वने वहाँ आश्रम में युगानुकूल अपने राष्ट्रकल्याण के पुण्यकार्य में भी भारत की प्राचीन आश्रम पद्धति के शिक्षा जैसे पवित्र क्षेत्र में आज के बाल युवा जीवन का नव निर्माण किया जाए।

इसी सद्भावना को साथ लिए आश्रम में बाहर से हरिद्वार आने वाले भक्त-यात्रियों की सुख-सुविधा आदि निर्माणकार्य के साथ साथ पूज्य ऋषि जी महाराज ने क्षेत्रवासी हित में विना किसी भेद भाव के जनसाधारण के कल्याणहित यहां धर्मार्थ चिकित्सालय, बालविद्यालय, संस्कृत विद्यालय, अन्नक्षेत्र, पुस्तकालय आदि विभिन्न विभाग भी स्थापित किए हैं जिनकी थोड़े ही समय में आशातीत प्रगति सामने दीखती है।

ऋषि-धर्मार्थ-चिकित्सालय

आश्रम के मुख्य द्वार पर बाहर ही दाईं ओर के कमरों में

ऋषि धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय है । यह चिकित्सालय भी निःशुल्क रुप में कई वर्षों से जनता की भरपूर सेवा करता आ रहा है।

विशाल सत्संगहाल

चिकित्सालय के आगे एक विशाल सत्संगहाल है जिसमें देव मन्दिर और पूज्य गुरूदेव श्री वंशीधर जी महाराज की प्रस्तर-प्रतिमा दर्शनीय है। इसी सत्संग भवन में प्रातः काल सत्संग, प्रवचन योगाभ्यास आदि का प्रतिदिन अभ्यास कराया जाता है।

यज्ञमण्डप, रमणीक बागीचा एवं गौशाला

इसी हाल के बाहर निकल कर बाँई ओर साथ में ही एक आदर्श गौशाला और रमणीक छोंटा जैसा उपवन का मैदान भी है इधर ही उत्तर की ओर एक बड़ा बागीचा फलफूलों से भरपूर है और साथ में ही लक्षचण्डी महायज्ञ के लिए बनाया गया सुन्दर मण्डप भी दर्शनीय है। इसी के साथ नवनिर्मित एक दुर्गा मन्दिर भी है। आश्रम में प्रत्येक नवरात्र में सहस्त्र चण्डी पाठ सहित यज्ञ अनुष्ठान किया जाता है,

देवदर्शन

इसी देव मन्दिर उपवन से पूर्व की ओर पूज्य ऋषि जी महाराज की परमाराध्या माता दुर्गा जगदम्बा का मन्दिर शक्तिपीठ है जिसके दांई ओर शिवमन्दिर और बांई ओर दक्षिणमुखी मनोहर हनुमान मन्दिर भी दर्शनीय है। जहां देवताओं के विधि पूर्वक पूजन आरती इत्यादि मंगल कार्य प्रतिदिन नियमित होते हैं।

गंगा-दर्शन

इनसे आगे पूर्व की ओर बढ़कर आश्रम का पक्का गंगा घाट स्नान पूजाध्यान के लिए बना है जहां से सीधे हिमालय दर्शन होते हैं. प्रकृति की रमणीक मनोहारी छटा मनलुभावनी है।

ऋषि संस्कृत-महाविद्यालय

आश्रम के इस गंगाघाट से दाँई ओर ही संस्कृत विद्यालय का नवनिर्मित भव्य भवन और पुस्तकालय है। इधर छात्रावास है जिसमें देश के विभिन्न भागों से आये हुए संस्कृतानुरागी छात्र निःशुल्क अध्ययन करते हैं। यह महाविद्यालय सन् १९६५ में स्थापित हुआ था।

ऋषि जूनियर हाई स्कूल, ऋषि बालविद्यालय

आश्रम के सत्संगहाल के पश्चिम भाग की ओर ही ऋषि बालविद्यालय और जूनियर हाई स्कूल स्थापित हैं, जिनमें लगभग ७०० बालक बालिकायें शिक्षा प्राप्त करते हैं।

ऋषि-अनुसन्धान-संस्थान

आश्रम के इस साँस्कृतिक विभाग में वैदिक पौराणिक अनुसन्धान की योजना है। जहां से एक शोध पत्रिका भी प्रकाशित करने का विचार सामने है इस महान कार्य को विशाल सुव्यवस्थित रूप देने के लिए साथ ही एक विशाल पुस्तकालय भवन निर्माण कार्य भी सम्पन्न होगया है।

इस आश्रम के मुख्य वार्षिक पर्व 'गुरु पूर्णिमा', 'वैशाखी पर्व' हैं जिन्हें विशेष उल्लास पूर्वक सांस्कृतिक रीति से मनाया जाता हैं इन पर्वों पर देश-विदेश के यात्री श्रद्धालु भक्तजन सम्मिलित होते हैं। आश्रम में सव का समभाव से अतिथि सत्कार होता है।

इस प्रकार तीर्थधाम हरिद्वार में भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार में संलग्न आश्रम निर्धन निकेतन अपना एक विशेष सांस्कृतिक महत्व लिए जन-जन के लिये दर्शनीय वना है। ★